Nāsadīyam
A Multi-Disciplinary National Research Journal (Annual)
Peer Reviewed/Refereed
Available online at: https://nasadiyam.dmmkkr.ac.in/
ISSN: 3108-0200 (Online)
Volume 4, Issue 1 (Jan – Dec), 2025, Pp 17-22

हजारीप्रसाद द्विवेदी के निबंधों में प्रकृति का प्रेरक स्वरूप

डॉ. आरती अग्रवाल
सहायक प्रवक्त्री (हिन्दी विभाग)
दयानन्द महिला महाविद्यालय
कुरुक्षेत्र, हरियाणा, भारत
ईमेलः- artiaggarwal15324@gmail.com
दूरभाषः 7015102723

संक्षेपिका

प्रकृति का सौन्दर्य साहित्यिक मन को सदैव प्रिय रहा है। वह उसमें अपने जीवन का सौन्दर्य देखता है। प्रकृति की प्रत्येक क्रिया, उसकी अभिरामता सृजक की रागात्मक वृत्ति को उत्तेजित करती है, उसमें निरंतर उल्लास और उत्सुकता का संचार करती है। प्रकृति की इस अपार सौन्दर्य राशि को ही हृदयंगम करके साहित्यकार अपनी कल्पना से सजा-सँवारकर इसे साहित्य में साकार करता है। सूर्योदय के प्रकाश में वह अपनी आशा, आकांक्षा, कर्म और ऊर्जा का लालित्य देखता है, अपरिमित आकाश में वह चेतना का विस्तार पाता है, पृथ्वी से वह क्षमा, सहनशीलता, धैर्य सीखता है, पर्वतों की अटलता में चित्त की स्थितप्रज्ञता देखता है, नदी के अविरल प्रवाह से वह अपनी सतत जीवन धारा को जोड़ता है तथा खिलते पुष्प में मानव विकास की संभावनाओं को देखता है। ऐसे न जाने प्रकृति के कितने ही कार्य व्यापार हैं, जिससे रचनाकार रचनात्मक ऊर्जा एवं प्रेरणा पाता है।

कुंजी शब्द - वीरूध-वेल लता, अभिरामता-मनमोहक आकर्षक, अपरमित -असीम, हदयंगम- मर्मस्पर्शी, अंतर्मन को छू लेने वाला, कंचनार-एक फूल, स्थित प्रज्ञता-अटलता, प्रत्युष-उषा काल

शोध पत्र

प्रकृति अर्थात् प्र+कृति । उस पराशक्ति परमात्मा की अनुपम कृति, जिसके सान्निध्य में मनुष्य का सर्वांगीण विकास होता है। मनुष्य प्रकृति की क्रोड़ में ही जन्म लेता है और अंततः इसी की वत्सल छाया में पल-बढ़कर इसी में विलीन हो जाता है। इसी चिर- साहचर्य के कारण मानव और प्रकृति एक प्रगाढ़ एवं अविलग अटूट बंधन से सम्पृक्त है, 'वास्तव में बाहर से जो सूर्य का प्रकाश है, वही भीतर बुद्धि का प्रकाश है, बाहर जो अंधकार है, वही भीतर का भय है, बाहर जो तृण वीरुध है और वृक्ष में ऊपर उठने की प्रक्रिया है, वही भीतर की उमंग है ।'[1] अतः सदा से प्रकृति और मनुष्य में सहकार भाव रहा है, स्पर्धा नहीं। इसी रूप में ये दोनों परस्पर एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। इन्ही अर्थों में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी प्रकृति को प्रत्येक स्थिति में मानव जीवन के लिए स्फूर्तिदायक, प्रेरणादायक और आनंदकारिणी बताते हैं। वे कहते हैं, 'प्रकृति अनुकूल होकर भी और प्रतिकूल होकर भी सरस विनोद की सहायता करती है।'[2] उनकी दृष्टि में भारतीय संस्कृति और साहित्य में भी इन दोनों का सौन्दर्य सर्वत्र उजागर हुआ है। प्रकृति का सौन्दर्य साहित्यिक मन को सदैव प्रिय रहा है। वह उसमें अपने जीवन का सौन्दर्य देखता है। प्रकृति की प्रत्येक क्रिया, उसकी अभिरामता सृजक की रागात्मक वृत्ति को उत्तेजित करती है, उसमें निरंतर उल्लास और उत्सुकता का संचार करती है। प्रकृति की इस अपार सौन्दर्य राशि को ही हृदयंगम करके साहित्यकार अपनी कल्पना से सजा-सँवारकर इसे साहित्य में साकार करता है। सूर्योदय के प्रकाश में वह अपनी आशा, आकांक्षा, कर्म और ऊर्जा का लालित्य देखता है, अपरिमित आकाश में वह चेतना का विस्तार पाता है, पृथ्वी से वह क्षमा, सहनशीलता, धैर्य सीखता है, पर्वतों की अटलता में चित्त की स्थितप्रज्ञता देखता है, नदी के

अविरल प्रवाह से वह अपनी सततजीवन धारा को जोड़ता है तथा खिलते पुष्प में मानव विकास की संभावनाओं को देखता है। ऐसे न जाने प्रकृति के कितने ही कार्य व्यापार हैं, जिससे रचनाकार रचनात्मक ऊर्जा एवं प्रेरणा पाता है। छायावाद के अनन्य कवि सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' के अनुसार भी 'प्रकृति जड़ को चैतन्यपूर्ण बनाती है, जिसमें मन ऊर्ध्वगामी होकर दर्शन की उदात्त भूमिका पर आरूढ़ हो जाता है'।[3]

द्विवेदी की दृष्टि में भी साहित्य में सौन्दर्य का यह महाभाव बाह्य जगत् की प्रकृति तथा सृजक की अंतः प्रकृति के सुसंयोग से उद्भूत होता है। उन्हीं के शब्दों में, ''जिस प्रकार हम बाह्य प्रकृति के बीच वन, पर्वत, नदी, निर्झर आदि की रूप विभूति से सौन्दर्य मन होते हैं, उसी प्रकार अंतः प्रकृति में दया, दाक्षिण्य, श्रद्धा, भक्ति आदि प्रवृत्तियों की स्निग्ध शीतल आभा में सौन्दर्य लहराता हुआ पाते हैं। यदि कहीं बाह्य और आभ्यंतर का योग हो, फिर क्या कहना''[4]। इन्हीं अर्थों में द्विवेदी ने भी प्रकृति के छोटे-बड़े नन्हे और विराट, सुकुमार और कठोर सभी रूपों में आह्लाद के विलक्षण क्षणों को खोजा है। कहीं हरी दूब में सांस्कृतिक चेतना, कहीं कांचनार की कली में जीवन का वसंत, कहीं गौरैया की चंचलता में मानवता की उमंग और उत्कर्ष, कहीं सनातन नीम की पत्तियों में जीवन की कटु-तिक्तता का अनुभव, तो कहीं कैक्टस से संघर्ष में भी हँसने की प्रेरणा पा जाता है। कभी-कभी ये खंडहरों, टीलों और वनों के बीच में इतिहास की रथयात्रा निकालते चलते हैं, कभी अपने उच्च सांस्कृतिक और धार्मिक भावबोध के कारण आकाश, पर्वत, वृक्ष आदि को देवात्माओं के रूप में पूजते हैं, तो कभी प्रत्येक पुष्प कली, पत्ती को अपने आराध्य देव की सर्वप्रिय वस्तु समझकर समर्पित करते दिखाई देते हैं। इस प्रकार अपनी अगाध लालित्य चेतना के आधार पर लेखक ने मानव जीवन के प्रत्येक रागबोध को प्रकृति से जोड़ा है और उसके प्रत्येक अवयव में मानव जीवन के सौन्दर्य का साक्षात्कार किया है, जिसका सरस उल्लेख इनके निबंधों में व्यापक स्तर पर हुआ है।

निबंधकार द्विवेदी के मतानुसार प्रकृति में प्रत्येक दिवस का आह्वान अरुणिम भोर के साथ होता है। उषाकाल में बालारुण की प्रकाश रश्मियाँ मानव जीवन में नयी आशा, उमंग और उल्लास के सौन्दर्य का वितान तानती है। द्विवेदी भी प्रत्युष काल को ध्यान, समाधि और आत्मशांति का सर्वोत्तम काल कहते हैं, जब स्वयं प्रकृति भी शांत मौन नीरव अवस्था में ध्यानस्थ मुनि की तरह प्रतीत होती है। रात्रि की कालिमा में भी इस निबंधकार की सूक्ष्म अंतर्दृष्टि विलक्षण सौन्दर्य का साक्षात्कार करती है। द्विवेदी को तो रात का प्रत्येक क्षण भावपूर्ण और सजीव लगता है। इसलिए वे कहते हैं, ''जो लोग दीवारों में घिरे और छत से ढके कमरों में रात काटने के अभ्यस्त हैं, उनसे यदि कहूँ कि रात जीवन्त वस्तु है तो न जाने क्या कहेंगे। लेकिन जो कोई भी आँख, कान रखने वाला भला आदमी तारा खंचित आसमान के नीचे घण्टे-आध-घण्टे के लिए आ खड़ा होगा, वह अनुभव करेगा कि रात सचमुच ही जीवंत पदार्थ है। वह साँस लेती हुई जान पड़ती है, उस के अंग-अंग में कंपन होता रहता है, वह प्रसन्न होती, उदास होती है, धुंधुआ जाती है, खिल उठती है धीरे-धीरे, लेकिन निस्संदेह वह करवट बदलती है, सो जाती है, जाग उठती है।''[5] वास्तव में रात के काले आवरण में ही सूर्योदय की ज्योतिर्मयी शोभा छिपी होती है।

सौन्दर्य का चितेरा लेखक का मन, विभिन्न प्रकार की ऋतुओं, पर्वतों, नदियों, सागरों आदि में भी एकदम नूतन एवं अपूर्व सौन्दर्य का साक्षात्कार करता है। भारतवर्ष की प्रमुख ऋतुएँ हैं-बसंत, ग्रीष्म, पावस (वर्षा), हेमन्त, शरद और शिशिर । किसी-न-किसी रूप में इन सभी ऋतुओं का प्रभावोत्पादक वर्णन इनके निबंधों में

विलक्षण ढंग से रूपायित हुआ है। यह सर्वविदित है कि बसन्त उत्साह, उमंग और नवसृजन की ऋतु है।। भीषण जाड़े की ठंड और प्रचण्ड गरमी के ताप के बीच फागुनी बयार हर मन में हुलास और स्निग्धता का संचार करती है। इस ऋतु के संदर्भ में द्विवेदी यह स्पष्ट करते हैं कि बसंत केवल कुछ समय के लिए ही नहीं आता, यह चिरस्थायी है। इसे जो चाहे जब चाहे अपने ऊपर ला सकता है। वे इसका संबंध अंतर्मन की उमंग से जोड़ते हैं। इसलिए उन्हें लगता है कि, ''बंसत भागता भागता चलता है। देश में नहीं काल में। किसी का वसंत पंद्रह दिन का है तो किसी का नौ महीने का। मौजी है अमरूद, बारह महीने इसका बसंत ही बसंत है।... सामने गंधराज पुष्पों की पाँत है। ये अजीत है, वर्ष में खिलते हैं, लेकिन ऋतु विशेष के उतने कायल नहीं हैं। पानी पड़ गया तो आज भी फूल सकते हैं।... ऐसी ही एक घास है-विष्णुकांता... कैसा मनोहर नाम है। फल और भी मनोहर होते हैं। जरा सा तो आकार होता है, पर बलिहारी है उस नील मेदुर रूप की। बादल की बात छोड़िए, जरा सी पुरवैया चल गई तो इसका उल्लास देखिए। बरसात के समय तो इतनी खिलती है कि पूछिए मत। मैं सोचता हूँ कि इस नाचीज लता को संदेश कैसे पहुँचता है। थोड़ी दूर पर वह पलाश ऐसा फूला है कि ईर्ष्या होती है। मगर उसे किसने बताया कि वसंत आ गया है, मैं थोड़ा-थोड़ा समझता हूँ, बसंत आता नहीं, ले आया जाता है। जो चाहे अपने पर ले आ सकता है।''[6]

ग्रीष्म की प्रचण्डता में भी ये निबंधकार विशिष्ट प्रकार के सौन्दर्य का अनुभव करता है। उनका मानना है कि ग्रीष्म ऋतु तपाती है, सुखाती है, पिघलाती है, वहीं माधुर्य और मृदुता का भी संचार करती है। यह तप, संयम, त्याग ओर शुचिता की ऋतु है। जिस प्रकार अग्नि में तपकर ही सोना कुंदन बनता है, ठीक उसी प्रकार तप साधना के बल पर मनुष्य उच्च मानवीय गुणों से परिपूर्ण होता है और उसका व्यक्तित्व विराट प्रकाश पुंज के समान प्रतिभासित होता है। द्विवेदी भी ग्रीष्म ऋतु के रसीले फल 'आम' में सरसता और सृजन का सौन्दर्य देखते हैं। पाषाण की छाती फोड़कर निकला छोटा सा पौधा कुटज भी इसी ऋतु से अक्षय रस खींचता है। शिरीष जैसा सुकुमार कोमल फूल भी इसी ऋतु के प्रचण्ड ताप की देन है। द्विवेदी जेठ की जलती और चिलचिलाती धूप में सरसता का सौन्दर्य देखते हैं। धूप की कठोर तपन में भी शिरीष का फूल मदमस्त बनकर झूमता रहता है जो लेखक के हृदय में हिल्लोल पैदा करता है, ''जब जेठ की जलती धूप में धरित्री निर्धूम अग्नि कुंड बनी होती है। उमस से प्राण उबलता रहता है और लू से हृदय सूखता रहता है, एकमात्र शिरीष कालजयी अवधूत की भाँति जीवन की अजयेता का मंत्रप्रचार करता रहता है।... मुझे मालूम होता है यह शिरीष एक अद्भुत अवधूत है। दुख हो या सुख, वह हार नहीं मानता ।... जब धरती और आसमान जलते रहते हैं तब भी यह हजरत न जाने कहाँ से अपना रस खींचते रहते हैं। मौज में आठों याम मस्त रहते हैं।... अवधूतों के मुँह से ही संसार की सबसे सरस रचनाएँ निकली हैं। कबीर बहुत कुछ इस शिरीष के समान थे मस्त और बेपरवा, पर सरस और मादक।''[7] लेखक, कबीर और कालिदास के प्रति जीवन भर इसीलिए नतमस्तक रहे, क्योंकि जीवन की प्रतिकूल परिस्थितियों में भी ये दोनों महान कवि अपनी कठिन साधना और तप के बल पर ही ऐसा सरस साहित्य लिख गए, जिसमें रससिक्त होकर आज भी संपूर्ण मानवता शीतलता का अनुभव करती है।

इनके निबंधों में वर्षा ऋतु के सौन्दर्य को भी पर्याप्त प्रश्रय प्राप्त हुआ है। द्विवेदी को भी वर्षा ऋतु बहुत प्रिय है। उनके अनुसार वर्षा वास्तव में आनन्दोल्लास की ऋतु है, जिसमें चित्त विनोद और प्रसन्नता के अनेकानेक और कौतूहली रंगों में रंग उठता है। तभी द्विवेदी कहते हैं, ''प्राचीन भारतवर्ष वर्षा काल का उपभोग नाना भाव से करता था। सबसे सुंदर और मोहक विनोद झूला झूलना था, जो आज भी किसी-न-किसी रूप में बचा हुआ है। मेघ (ध्वनि

युक्त) निःस्वन और धारा की रिमझिम के साथ झूले की अद्भुत तुक मिलती है। जिस जाति ने इस विनोद का इस ऋतु के साथ सामंजस्य ढूंढ़ निकाला है, उसकी प्रशंसा करनी चाहिए। वर्षा काल कितने आनंद और सुख का काल है, इसे भारतीय साहित्य के विद्यार्थी मात्र जानते हैं। 'मेघदूत' का अमर संगीत इसी काल में संभव था। कोई आश्चर्य नहीं, यदि केका (मोर वाणी) की आवाज से, मेघों के गर्जन से, मालती लता के पुष्प विकास से, कदम्ब की भीनी-भीनी सुंगध से और चातक की रट से मनुष्य का चित्त उत्क्षिप्त हो जाय, वह किसी अहैतुक औत्सुक्य से चंचल हो उठे। वर्षा काल ऐसा ही है।''[8] अतः इस ऋतु में सर्वत्र उत्साह, उल्लास, चंचलता और हर्ष-विनोद के साथ-साथ हरियाली और उत्सव के वैभव की चारुता भी छा जाती है। द्विवेदी की मान्यता है कि 'वर्षा ऋतु के बीत जाने पर शरद ऋतु का आगमन एक नववधु की भाँति होता है। शरद ऋतु आ गयी। प्रसन्न है, उसका चन्द्रमुख, निर्मल है उसका अंतर उत्फुल्ल है, उसके कमलनयन लक्ष्मी की भाँति विभूषित है वह लीला कमल से तथा उपशोभित है हंस रूपी बाल व्यजन नन्हे से पंखे से। आज जगत् का अशेष तारुण्य प्रसन्न है... सबकुछ विचित्र सबकुछ नवीन, सबकुछ स्फूर्तिदायक।'[9] कोमल शरद ऋतु के बाद कठोर शीतकाल आता है, जिसे द्विवेदी असहनीय एवं कठोर जाड़े का काल न कहकर उत्सव का, कन्दुक क्रीड़ा का सरस विनोद का काल कहते हैं।

इसी तरह बाह्य प्रकृति के अनेकानेक रूपों में पृथ्वी, पर्वत, सागर, सरिता और निर्झर के सौन्दर्य ने भी इस निबंधकार के मन को खूब लुभाया है। पर्वतीय प्रकृति के अंतर्गत 'देवतात्मा' हिमालय इनका प्रमुख आकर्षण रहा है। हिमालय की उदारता और विराटता के प्रति द्विवेदी के उदात्त भाव अभिव्यक्त हुए हैं। वे कहते हैं, ''हिमालय केवल पृथ्वी का मानदण्ड ही नहीं, वह हमारी आदि काल से चली आती हुई सांस्कृतिक परम्परा की उत्स-भूमि है, भारतवर्ष का जो कुछ श्रेष्ठ है, महान है, गौरवास्पद है, उसका आश्रय है। हिमालय-हीन भारतवर्ष उसी प्रकार हो जायेगा जैसा मस्तिष्क विहीन मनुष्य। हिमालय हमारा अविच्छेद अंग है, ऐसा अंग जो हमारी सत्ता का भंडार संचित रखे है। कालिदास ने एक जगह हिमालय की बर्फीली चोटियों को आनंद-मत्त महादेव का पुंजीभूत अट्टहास कहा है। आनंद विह्वल महादेव का पुंजीभूत अट्टहास आनन्दोल्लसित मगंलमय देवता का हर्षोल्लास न हो, तो गंगा और यमुना की धारा भी नहीं होगी, भारतवर्ष का अद्वितीय शस्य-श्यामल मैदान भी नहीं होगा और इस देश के नर-नारियों के चित्त में उल्लसित होने वाली महिमा भी नहीं रहेगी। हिमालय है सदा रहेगा, हमारा रहेगा, क्योंकि वह है इसलिए हम है, हमारी देवात्मा संस्कृति है...।''[10] द्विवेदी की दृष्टि में गंगा इस पवित्र भारत भूमि को भीतर और बाहर से पवित्र कर रही है। नदियाँ केवल भौतिक समृद्धियों के कारण ही हमारी अमूल्य निधि नहीं है, बल्कि वे भारतीय धर्म-साधना, संस्कृति और जनता को भारतीय जनमानस के लिए अन्तरात्मा के स्तर पर अद्भुत ढंग से भी प्रभावित करती हैं।

इतना ही नहीं प्रकृति का कण-कण, छोटी से छोटी तिनका-पत्ती, फूल-फल भी इनके निबंधों में जीवन के लिए कई अनमोल संदेश दे जाते हैं, मानव को जीवन जीने की कला सिखाते हैं। पत्थर की छाती चीरकर निकला ठिंगना सा पौधा कुटज भी द्विवेदी को उनके जीवन में आए तूफान में एक गुरु की भाँति आत्मिक संबल प्रदान करता है। काशी विश्वविद्यालय में कुलपति रहते हुए कई षड्यंत्रों के फलस्वरूप दारुण संत्रास एवं यंत्रणा को भोग कर द्विवेदी श्कुटजश् के मध्यम से यही उपदेश देते हैं, ''जीना चाहते हो? कठोर पाषण को भेदकर, झंझा-तूफान को रगड़कर अपना प्राप्य वसूल लो, आकाश को चूमकर, अवकाश की लहरी में झूमकर, उल्लास खींच लो।''[11] निस्संदेह कुटज की इसी अपार जीवनी शक्ति को देखकर द्विवेदी प्रतिकूल परिस्थितियों में भी शिरीष के फूल की

तरह अविचल, अवधूत, अनासक्त योगी बने रहे। इसी प्रकार नारियल, आम, कांचनार, अशोक, काश, कदम्ब, हरसिंगार, पान, तांबूल अनेक फल फूल हैं, जो इनके निबंधों में मनुष्य को जीने की राह दिखाते हैं। नारियल कठोरता में मधुरता का, आम सृष्टि-सृजन का, कांचनार जीवन में उमंग का, अशोक परम्परा और संस्कृति की गतिशीलता का, देवदारु चित्त की स्थितप्रज्ञता का, काश का फूल जीने की इच्छा का, कदम्ब लोकसंस्कृति का, हरसिंगार जीवन की क्षणिकता का, पान-तांबूल जीवन में बढ़ती चाटुकारिता, झूठी मिन्नत और खुशामद का प्रतीक बनकर पाठक को जीवन की भिन्न-भिन्न सच्चाइयों और स्थितियों से अवगत कराते हैं।

द्विवेदी का मानना है कि प्रकृति के परिवेश में पशु-पक्षियों और विविध वन्यजीवों के सौन्दर्यांकन में हिन्दी कवियों ने भरपूर रुचि प्रदर्शित की है। इसलिए निबंधकार का हृदय भी अपने अंतस्थ नीड़ में अनेक वन्य प्राणियों के मीठे कोलाहल का, गुंजन का, चहचहाट का आभास पाता है। द्विवेदी तो इनके बिना प्रकृति सौन्दर्य वर्णन को ही अधूरा मानते हैं, इसलिए वे कहते हैं, ''इन पक्षियों को संस्कृत साहित्य में से निकाल दीजिए, फिर देखिए वह कितना निर्जीव हो जाता है।''[12] तभी तो आदिकवि वाल्मीकि ने क्रौंच पक्षी की करुण चीत्कार सुनकर रामायण जैसा भव्य काव्य रच डाला था। संस्कृत साहित्य में पशु-पक्षियों के इसी महिमावान रूप को द्विवेदी इस प्रकार रेखांकित करते हैं, ''संस्कृत साहित्य में पक्षियों की इतनी अधिक चर्चा है कि अन्य किसी साहित्य में इतनी चर्चा शायद ही हो।... उन दिनों के लिए गृह और अंतःपुर के प्रासाद प्रांगण से लेकर युद्ध क्षेत्रों और वानप्रस्थों के आश्रम तक कोई-न-कोई पक्षी भारतीय सहृदय के साथ अवश्य रहा करता था। वह विनोद का साथी था, रहस्यालाप का दूत था, भविष्य के शुभाशुभ का द्रष्टा था। वियोग का सहारा था, संयोग का योजक था, युद्ध का संदेश वाहक था और जीवन का ऐसा कोई क्षेत्र नहीं था, जहाँ वह मनुष्य का साथ न देता हो।''[13]

इस प्रकार हम देखते हैं कि अपनी अगाध लालित्य चेतना के आधार पर इन निबंधकारों ने प्रकृति के प्रत्येक अवयव में मानव जीवन के सौन्दर्य का साक्षात्कार किया है। प्रकृति के प्रत्येक अनगढ़ और सुघड़ रूप ने इन लेखक के सृजक मन को अपनी ओर आकृष्ट किया है और इनकी दृष्टि का विस्तार भी किया है और इसी रूप में उन्होंने प्रकृति से निरंतर रचनात्मक प्रेरणा एवं ऊर्जा पाई है। यदि हम कहें कि प्रकृति सौन्दर्य द्विवेदी के निबंध साहित्य के सौष्ठव का मूल स्रोत है और सौन्दर्य विधान का सर्वाधिक मूल्यवान प्रदेय (उपादान) है, तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। अतः प्रकृति रूपी यह सुंदरी इनके निबंधों में अप्रतिम सौन्दर्य विधात्री के रूप में अवतरित हुई है। प्रकृति का सौन्दर्य इनके निबंधों में जीवन संस्कार के रूप में उभरा है।

संदर्भ सूची

1. विद्यानिवास मिश्र, हिंदू धर्मः जीवन में सनातन की खोज (भूमिका) पृष्ठ-3
2. हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली भाग-9 पृष्ठ 82
3. सूर्यप्रसाद दीक्षित, छायावादी कवियों का सौन्दर्य विधान, पृष्ठ -138
4. हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली भाग-1 बाणभट की आत्मकथा, पृष्ठ -128
5. हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली भाग-9, पृष्ठ -122
6. हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली भाग-9, पृष्ठ -51
7. हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली भाग-9, पृष्ठ -26
8. हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली भाग-9, पृष्ठ -81

9. हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली भाग-9, पृष्ठ -82
10. हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली भाग-9, पृष्ठ -151
11. हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली भाग-9, पृष्ठ -39
12. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली भाग-10, पृष्ठ -204
13. हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली भाग-10, पृष्ठ -204